"कालिदास के साहित्य में स्वछता विषयक परिचिन्तन"

डॉ० इन्दिरा जुगरान
एसो०प्रोफेसर-संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ऋषिकेश

प्रकृति और मानव-शरीर में जन्मजात साहचर्य रहा है। यह एक सर्वमान्य बात है कि मानव प्रकृति की शस्य-श्यामल गोद में जन्म लेता, पलता और उसी के विस्तृत प्रांगण में क्रीड़ा कर अन्तर्धान हो जाता है। जो प्राणी प्रकृति में रहता है उसे प्रकृति के आठ रुप आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रकृति के आठ रुप हैं- जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र आकाश पृथ्वी और वायु। प्रकृति के ये आठों रुप यदि स्वच्छ और निर्मल हैं तो इनके सहयोग से यह जीवजगत् सदा स्वस्थ रहता है।

संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान विज्ञान का न केवल मूल है, अपितु समस्त विश्व वाङ्मय में सर्वाधिक प्राचीन भी है। हमारे प्राचीन ऋषि अपने परिवेश को परिस्कृत रखते थे। उन्हें यह ज्ञान था कि मानव अपनी आजीविका अस्तित्व तथा जीवन का सुख एवं आनन्द प्रकृति के बिना नहीं प्राप्त कर सकता है।

संस्कृत साहित्य में प्रकृति के जड़ एवं चेतन दोनों रुपों का वर्णन हुआ है। प्राचीन मनीषी पर्यावरण के प्रति सचेत थे तथा इसके महत्व को समझते थे। आज जब मानव की सहचरी प्रकृति दोहन से अन्य जीवों के साथ हमारा भी अस्तित्व संकट ग्रस्त होता जा रहा है तब ऐसी स्थिति में प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्रदूषण निवारण के लिए निर्दिष्ट उपायों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

पर्यावरण सन्दर्भ में महाकवि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तलम् का प्रारम्भ ही समस्त सृष्टि को अपने में समेट लेता है। इस श्लोक में प्रकृति के आठ रुपों का भगवान शिव की अष्टमूर्तियों के रुप में स्मरण किया गया है :-

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या बहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधन्तः श्रुति विषय गुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्
यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्ट्राभिरीशः।।

(अभिज्ञानशाकु०1/1)

कालिदास ने प्रकृति को शिव और प्रकृति के अष्ट रुपों को शिव की अष्टमूर्तियाँ माना है। इन अष्टमूर्तियों का सीधा सम्बन्ध पृथ्वी के जीव जगत से है।

1. मनु आदि शास्त्रकारों का मत है ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम जल की ही सृष्टि की थी। अतः कालीदास ने सबसे पहले शिव की जलमयीमूर्ति का स्मरण किया है– 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या' स्वच्छ और निर्मल जल के सेवन से शरीर स्वस्थ हो जाता है। जल जीवन है जल के बिना प्राणरक्षा नहीं होती। जल शरीर के विकारों को नष्ट कर देता है।
2. प्रकृति अर्थात् शिव का द्वितीय रुप 'अग्नि' है जिसे कालिदास ने 'बहति विधिहुतं या हविः' के रुप में स्मरण किया गया है। शास्त्र विधि के अनुसार हवन करने पर अग्नि देवता इस हव्य सामग्री को ग्रहण करती है। हवि के रुप में डाले गये पदार्थ अग्नि में जलकर सूक्ष्म रुप में परिणत हो वायु–मण्डल के प्रदुषण को नष्ट करते हैं। अग्नि का उचित उपयोग सबके लिए कल्याणकारी रहा है।
3. प्रकृति का तृतीय रुप होता–यजमान है। सृष्टि के समस्त कर्म यज्ञ हैं और यज्ञों का कर्त्ता यजमान होता है। इस पृथ्वी का प्रत्येक क्रियाशील प्राणी होता–यजमान है।
4. "ये द्वे कालं विधतः" कालिदास के इस वाक्य से–जो दो मूर्तियाँ सूर्य और चन्द्र काल अर्थात् दिन और रात्रि का विधान करते हैं जिनका इस सृष्टि से अटूट सम्बन्ध है। सूर्य अपनी किरणों से जगत को आरोग्य प्रदान करते हैं। चन्द्रमा औषधियों में रसों का संचार करते हैं।
5. प्रकृति का छठा रुप आकाश है। यह समस्त जीव जगत को श्रवण शक्ति प्रदान करता है।

6. प्रकृति का सप्तम रुप पृथ्वी है जिसे कालिदास ने "यमाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति" कहा गया है। अतः पृथ्वी अपने से उत्पन्न अन्न वनस्पति आदि से प्राणियों को आरोग्य प्रदान करती है।
7. प्रकृति का अष्टम रुप वायु है जिसे कालिदास ने "यया प्राणिनः प्राणवन्तः" अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी प्राण वाले होते हैं। वायु सतत् बहता है इसी से समस्त प्राणी जीवित हैं। वायु हमारे प्राणों की रक्षा करता है।
8. यह अष्ट रुपा प्रकृति ही पर्यावरण है जो निरन्तर हमारे कल्याण में लगी रही है। जिस तरह से शिव वन्दनीय हैं उसी प्रकार पर्यावरण भी। पहले हमारे समस्त कर्म यज्ञ द्वारा प्रकृति के इन अष्ट रुपों में से अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि की आराधना और उपासना की दृष्टि से होते थे। यज्ञ हवनहोमादि में निक्षिप्त घृतादि हव्य सामग्री से उत्पन्न सुगन्धित धूमों से समस्त पर्यावरण सहित वातावरण शुद्ध तथा सुगन्धित होता रहता था।

महाकवि कालिदास ने प्रकृति के साथ तादात्म्य सम्बन्ध की स्थापना की है। कालिदास के लिए प्रकृति यन्त्रवत और निर्जिव नहीं है। वह मानव जगत के साथ पूर्णतया सम्बन्धित हैं। कालिदास पेड़ पौधे पर्वत और नदियों के प्रति संवेदनशील हैं। कालिदास के साहित्य में नदियों, पर्वतों वन वृक्षों में चेतन व्यक्तित्व है जैसा कि पशुओं में और देवों में है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला वृक्षों को अपना सगा भाई तथा लताओं को सगी बहन मानती है वह उसी प्रकार उनके साथ व्यवहार भी करती है वह कहती है :–

"न केवल तात नियोग एवा अस्ति में सोदरस्नेहो रप्येतेषः"

यही कारण है कि जब तक वह इनको जल नहीं पिला देती तब तक स्वयं जलपान नहीं करती है। आभूषणों से प्रेम होने पर भी वह इनसे किसलयों को नहीं तोड़तों है। पुष्पों के प्रथम आगमन पर उसे हर्ष होता है इस प्रकार व्यवहार करने वाली

शकुन्तला आज पतिगृह जा रही है। अतः कण्व इस सन्दर्भ में सभी की अनुज्ञा चाहते हैं :-

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या"
नादत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तलां पतिगृंह सर्वेरनुज्ञायताम।

(अभिज्ञानशाकु० 4/9)

महर्षि के उक्त कथन को सुनकर प्रकृति भी कोयल की कूक ध्वनि से अपनी स्वीकृ ति प्रदान कर देती है -

"परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।"

(अभिज्ञान शाकुन्तलम्)

शकुन्तला के पति गृहगमन के अवसर पर तपोवन स्थित तरु भी अपनी सहानुभूति, प्रेम एवं सहज शुभकामना के रुप में रेशमी वस्त्र, महावर एवं आभूषणों को प्रस्तुत करते हैं-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठयूतश्चरणोपभोग सुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वन देवताकरतलैरापर्व भागोत्थितै
र्दत्तान्याभरणानि तत् किसलयोद् भेद प्रति द्वन्द्विभिः।।

(अभिज्ञानशाकु० 4/10)

अर्थात् किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान सफेद रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पाद रंजनोपयुक्त महावर निकाल दिया। अन्यों ने मणिबन्ध देश तक उठे हुए सुन्दर नव पल्लव की प्रतिस्पर्धा करने वाले वन देवता करतलों से अंलकार दिये।

शकुन्तला के पतिगृह गमन के समय होने वाले वियोग के कारण सम्पूर्ण प्रकृति दुःखी हैः-

उद्गीर्ण दर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः
अपसृत पाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्युश्रूणीव लताः।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/12)

अर्थात् हरिणी अपने मुख से कुश का ग्रास उगल दे रही है, मोर ने नाचना त्याग दिया हे तथा लताएं पीले-पीले पत्ते गिरा कर मानों आंसू बहा रही है। इस प्रसंग से

इन सबका शकुन्तला के प्रति अनन्य स्नेह अभिव्यजिंत हो रहा है। शकुन्तला ने पशु पक्षियों के प्रति पुत्रवत व्यवहार किया गया है। शकुन्तला के द्वारा पालित मृग शावक उसे रोकना चाहता है–

"अहो! को नु खलु एष पदाक्रान्त इव में पुनः पुनर्वसनान्ते सज्जते।"

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थअंक)

यह देख कण्व ऋषि कहते हैं –

यस्यत्वया व्रण विरोपणमिङ्गुदीनां तैलं न्यषिच्यत मुखे कुश सूचिविद्धे।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धित को जहाति सोऽयं न पुत्र कृतकः पदवीं मृगस्ते।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/4)

अर्थात् जिसके मुख के तीक्ष्ण अग्रभाग से विक्षत हो जाने पर तुमने घावों को भरने वाला इङ्गुदी का तेल लगा–लगाकर जिसका घाव ठीक किया हैं तथा श्यामाक की मुट्ठियों से जिसका पालन किया है वह बच्चे की तरह पाला हुआ हिरण का बच्चा तेरे मार्ग को नहीं छोड़ रहा है। इस प्रसंग में मुख में घाव हो जाने के कारण व हिरण का बच्चा स्वयं नहीं खा सकता है। अतः शकुन्तला मुट्ठी में कोमल घास लेकर धीरे–धीरे उनके घाव को बचा कर खिलाती थी। इस प्रसंग में शंकुलन्ता का पशु पक्षियों के प्रति माता और पुत्र की भांति स्नेह प्रकट हो रहा है।

कालिदास के कुमार संभव के प्रथम सर्ग में हिमालय के नगाधिराजत्व का वर्णन मात्र जड़ प्रकृति का वर्णन न होकर एक देवात्मा का वर्णन है, जो पृथ्वी का मानदण्ड है।

"अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोय निधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

(कुमार सम्भव–प्रथम सर्ग–।)

अर्थात् भारत के उत्तर दिशा में अत्यन्त उन्नत शिखरों वाला हिमालय नामक पर्वत राज है। वह दिव्य आत्मा वाला है अर्थात् उसमें अचेतन पर्वत होते हुए भी चेतन वत् व्यवहार की सामर्थ्य है। पूर्व और पश्चिम के समुद्र तक फैला होने के कारण वह पृथ्वी के मानदण्ड के समान स्थित है।

कालिदास के रघुवंश नामक महाकाव्य में गाय के अनुपम प्रेम का वर्ण मिलता है। रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में सिंह राजा दिलीप को देवदारु वृक्ष की सार्थकता बतलाता हुआ कहता है :–

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्री कृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेम कुम्भस्तन निःसृताना स्कन्दस्य मातुः पयासां रसज्ञः।।

(रघुवंश–२/३६)

अर्थात् हे राजन तुम जो यह अपने आगे खड़े हुए देवदारु के वृक्ष को देख रहे हो इसे शंकर जी ने अपने पुत्र के समान माना है। यह कार्तिकेय की माता पर्वती के सुवर्ण के घट रुपी स्तनों से निकले हुए दुग्धरुपी जल के सुन्दर स्वाद को जानता है।

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्य द्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अर्थेन मेद्रस्तनया सुशोच सेनान्यमाली ढमिवा सुरास्त्रैः।।

(रघुवंश २/३७)

किसी समय अपने गण्डस्थल को खुजलाते हुए किसी जंगली हाथी ने इस देवदारु वृक्ष की छाल को उधेड़ दिया था। पार्वती जी ने इस पर ऐसा शोक किया था मानों दैत्यों के अस्त्रों से स्कन्द कुमार आहत हो गये हो। यहां पर वृक्षों के प्रति मातृत्व स्नेह अभिव्यञ्जित हो रहा है।

इस प्रकार कालिदास के साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के समग्र रुपों के प्रति संवेदना विकसित करनी चाहिए। कालिदास के साहित्य में जीवन की उत्तमता के लिए प्राकृतिक परिवेश को प्रथम स्थान दिया गया है।